IJAER/March-April-2025/Volume-14/Issue-2 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

सामाजिक न्याय के गांधीय प्रतिमान : एक विश्लेषण

प्रो. (डॉ.) मैना निर्वाण
आचार्य
राजनीति विज्ञान विभाग
डूंगर राजकीय महाविद्यालय
बीकानेर

सोहन लाल
सह आचार्य
राजनीति विज्ञान विभाग
चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय
कन्या महाविद्यालयश्रीगंगानगर

शोध सार

गांधी जी वास्तव में कोई राजनीतिक विचारक नहीं थे और न ही उन्होंने किसी विचारधारा के प्रवर्तन का दावा किया। वे वस्तुतः कर्मयोगी थे। गांधीय चिंतन सही अर्थों में, उनके तत्व ज्ञान का रूपांतरण है। उन्होंने अपने चिंतन को उपनिषदों के मूल मंत्र ''ब्रह्म सत्यम् जगत मिथ्या'' पर आधारित किया। उन्होंने आध्यात्मिकता एवं मानवीय जीवन के लौकिक पक्षों के मध्य सामंजस्य स्थापित कर एक मौलिक राजनीतिक एवं सामाजिक दर्शन का सूत्रपात किया। उनका दर्शन संकीर्ण मत–मतान्तरों से परे एक शाश्वत मानवता का निर्मल उद्घोष है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि वे किसी नए वाद को जन्म नहीं दे रहे है। अपने मानवता वादी चिंतन के शाश्वत महत्व को समझाते हुए उन्होंने लिखा ''गांधी मर सकता पर गांधीवाद सदा जीवित रहेगा।''

एक ही परमात्मा की संतान होने के कारण मानव मात्र के हितो के बीच अनिवार्य एकता होती है। मानव मानव के बीच हीन या श्रेष्ठ, ऊँच–नीच का भेद–भाव परमात्मा की सत्ता का निषेध है। प्रत्येक मानव का यह दायित्व है कि वह व्यक्ति की प्रतिभा एवं गरिमा के विपरीत होने वाले किसी भी अन्याय, उत्पीड़न अथवा दमन का पूरी ताकत के साथ संघर्ष करे। ईष्वर प्राप्ति का मार्ग एकान्त में की गई साधना कदापि नही हो सकता, उसके लिए तो व्यक्ति द्वारा मानव मात्र की सेवा के प्रति समर्पण आवष्यक है।

शब्द कुंजी : सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, आध्यात्मिकता, लौकिकता, मानवाधिकार।

शोध आलेख

गांधी जी सम्पूर्ण संसार में के कण कण में परमात्मा की चेतना से व्याप्त है। उस परमात्मा को ईष्वर या सत्य कोई भी नाम दिया जा सकता है। प्रत्येक मानव परम सत्ता के एक ही स्त्रोत से अनुप्राणित है। उन्होने चार आधारभूत सिद्धांतो को निर्धारित किया।

1. मानव मात्र के हितो की अनिवार्य एकता।
2. मानव मात्र की निरपवाद समानता।
3. व्यक्ति की गरिमा की सर्वोच्चता।
4. सेवा के प्रति समर्पण।

एक ही परमात्मा की संतान होने के कारण मानव मात्र के हितो के बीच अनिवार्य एकता होती है। मानव मानव के बीच हीन या श्रेष्ठ, ऊँच–नीच का भेद–भाव परमात्मा की सत्ता का निषेध है। प्रत्येक मानव का यह दायित्व है कि वह व्यक्ति की प्रतिभा एवं गरिमा के विपरीत होने वाले किसी भी अन्याय, उत्पीड़न अथवा दमन का पूरी ताकत के साथ संघर्ष करे। ईष्वर प्राप्ति का मार्ग एकान्त में की गई साधना कदापि नही हो सकता, उसके लिए तो व्यक्ति द्वारा मानव मात्र की सेवा के प्रति समर्पण आवष्यक है।

अहिसां गांधीवादी अविष्कार नही है, जबकि इसका आदर्ष तो शताब्दियों पहले उपनिषद, बुद्ध एवं महावीर के दर्षन में प्रतिपादित कर दिया गया था। गांधी जी का अंहिसा के सिद्धांत में योगदान यह है कि उन्होने नवाचार करके, इसकी नवीन संदर्भो में व्याख्या कर एवं परिमार्जित कर मानवीय आचार के एक जीवंत नियम के रूप में विमर्ष समाजिक न्याय को प्रस्थापित करने में किया। उन्होनें कहा अहिसां उस व्यक्ति के प्रति प्रेम, संवेदना और सेवा के भाव में निहीत है। जिसे घृणा करने के कारण उपस्थित हो। ऐसे व्यक्ति के प्रति प्रेम करने में, जो हमसे प्रेम करता है, अहिसां निहीत नही है अपितु यह तो स्वाभाविक नियति है। सच्ची अहिसां जो निःस्वार्थ और निरपेक्ष भाव से सबके प्रति न्याय का उद्घोष करे। यह कोई जड़ सिदांत नही अपितु गत्यामक नैतिक आस्था है। यह दूसरों के प्रति निःस्वार्थ प्रेम और उन्हे पीड़ा व कष्ट से मुक्त करने की निर्मल प्रेरणा से निर्दिष्ट होता है। यह व्यक्तिगत सदगुण के साथ–साथ आदर्ष सामाजिक व्यवस्था का आधारस्तंभ भी है। क्योंकि अहिसां के वगैर किसी संगठित समाजिक व्यवस्था की कल्पना भी नही की जा सकती है। अहिसां की वास्तविक अभिव्यक्ति लोगो की निःस्वार्थ सेवा के रूप में हो सकती है। यह सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक एवं धार्मिक हर प्रकार के अन्याय, दमन, शोषण और उत्पीड़न से विमुक्ति का उपयुक्त साधन है। अहिसां की उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति एक दोषमुक्त समाजिक व्यवस्था (जो अन्याय के स्थान पर न्यायाधारित हो) के निर्माण के संकल्प के रूप में होती है।

समाज के उपेक्षित, वंचित व कमजोर तबके के लोगो का शक्ति के द्वारा समाजिक न्याय के यर्थाथ को उपलब्धि को हासिल का पाना असंभव है। वे अहिसांपरक साधनो के प्रषिक्षण द्वारा अपने प्रति होने वाले अन्यायो का प्रतिकार अहिसंक असहयोग के द्वारा कर सकते है।

समाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिए मार्क्सवादी चिंतन वर्ग संघर्ष उचित ठहराते है। वहीं गांधी वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग की बात करते है। न्यूनधिक रूप में वे समाजिक न्याय के साध्य को हासिल करने के लिए साधनो की पवित्रता पर बल देते थे। जार्ज सोरेल वित्वंसात्मक साधनो का अनुमोदन करते है, जबकि गांधी समाजिक न्याय को प्राप्त करने की शर्त अनिवार्य रूप में अहिसां को मानते है उन्होनें कहा कि पवित्र साध्य को प्राप्त करने के साधन भी पवित्र हो, तभी वह व्यवस्था चिरस्थाई रह सकती है। पाष्चात्य विद्वान जेरेमी बैथंम उपयोगितावाद को समाजिक न्याय के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए अपरिहार्य मानते हुये वे एक ऐसे सर्वोदयी समाज की स्थापना में समाजिक न्याय के तत्व देखते है जिसका मूलमंत्र है सबका उदय, सबकी उन्नति, सबका समान हिस्सा, सबको समान न्याय।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कष्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

(यजुर्वेद 36.17)

गांधी चिन्तन समाज में व्याप्त भयंकर आर्थिक असमानता को भी समाजिक अन्याय का द्योतक मानते है। समाज के संसाधनो एवं स्त्रोतो पर कुछ लोगो का एकाधिकार टूटेगा, तभी उपेक्षित, वंचित एवं कमजोर लोगों का उत्थान संभव हो पायेगा। वे स्वीकार करते थे कि प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता और क्षमता को समाजिक विकास, सामाजिक संतुलन एवं समाजिक न्याय के लिए इस प्रकार प्रयुक्त किया जाना चाहिए। जिससे निहीत असमानताएं अधिक प्रभावी न हो। वे नैतिकता व आर्थिक व्यवस्था को समाजिक न्याय के लिए एक दूसरे के पूरक मानते है क्योंकि इन दोनो के सामंजस्य से सामाजिक न्याय के मूल्य उद्भूत होते है। वे संसाधनो के न्यायपूर्ण वितरण के पक्षघर थे। इसलिए गांधी जी ट्रस्टी षिप (न्यासिता) के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। जिसका आषय वितरण की समानता में सन्निहीत है। उनका मानना था जिन लोगो के साथ अपनी आवष्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त धन है उन्हें अतिरिक्त धन का संवहन न करके समाज के वंचित वर्ग के उपयोगार्थ समाज को समर्पित कर देना चाहिए। समाज के प्रत्येक वर्ग को आर्थिक न्यूनतम प्राप्त होना चाहिए।

सामाजिक न्याय के गांधीय प्रतिमान

1. समाजिक न्याय एवं पंचमहाव्रत।

गांधी जी ने कहा कि समाजिक पुनर्रचना हेतु स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के आधार पर अहिसंक समाज रचना का आदर्ष पंचमहाव्रतो के पालन से प्राप्त किया जा सकता है। ये पंच महाव्रत है अहिसां, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य।

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रहायमा :

(योगसूत्र 2/30)

1.1 अहिसां – उन्होंने अहिंसा के सकारात्मक अर्थ को मनवाली एक कर्म के अनुषासन से संबंधित किया है। दूसरे लोगो के हितो के प्रतिकुल मन, वचन एवं कार्य की अभिव्यक्ति को समाजिक अन्याय कहा है। अपने सक्रिय स्वरूप में सब जीवों के प्रति सद्भावना, निरीह के प्रति प्रेम एवं दुर्भावना का सम्पूर्ण विरोभाव की अहिंसा है। सम्रांतवर्ग तबका जब निम्न, वंचित एवं उपेक्षित वर्ग के प्रति सेवाभाव से अपने कार्य व्यवहार को संपादित करेगा तो समाज के भीतर सामाजिक समरसता एवं बंधुत्व का संचार होगा। इस प्रकार अहिंसा का वास्तविक अर्थ हुआ– ''प्राणी पात्र के प्रति प्रेम का अभ्युदय।'' मन वचन व कर्म द्वारा किसी को ठेस पहुंचाना तो दूर रहा उसके बारे में कल्पना करने को भी गांधीजी हिंसा मानते थे। अहिंसा की प्रकृति अत्याचारों को जड़ अथवा मूल से समाप्त करना है।

गांधी चिंतन का अहिंसक समाज सभी प्रकार के अत्याचारों, शोषण एवं दमन रहित होगा और सामाजिक न्याय की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होगा।

1.2 सत्य :

सत्यमेव जयते

(सतपथ ब्राह्मण 2/1/9/10)

गांधी जी का मानना है कि सत्य मानव जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना किसी जीवन होने के लिए प्राण आवश्यक है। गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन दर्शन सत्य के साथ किए गए प्रयोगों का दर्शन है। समस्त ब्रह्माण्ड में सत्य की ही सत्ता है।उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसीलिए ईश्वर का नाम भी सत्यनारायण है। वे सत्य को निरपेक्ष सत्ता मानते थे। समस्त मानवीय गतिविधियां सत्य केन्द्रित होनी चाहिए। सत्य ही प्राण तत्व होना चाहिए। सत्य वही है जो विचार में, वाणी में तथा कर्म में उतर सके। इसमें स्वार्थ को लेशमात्र भी गंध नहीं होनी चाहिए। सत्य में सद्गुणों का समावेश रहता है जो व्यक्ति सत्य के मार्ग पर चलता है अर्थात् मनवचन एवं कर्म से सत्य का सत्कार करता है। सत्य आधारित स्वार्थ रहित समाज में कोई भी किसी का शोषण नहीं करता है।

प्रत्येक व्यक्ति मानव होने के कारण समान है, चाहे वह किसी भी जाति, वर्ग, वर्ण अथवा कर्म का हो। प्रत्येक व्यक्ति में सत्य का अंश कम या अधिक मात्रा में होता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति द्वारा दूसरे प्रत्येक व्यक्ति में निहीत सत्य के अंश का सम्मान करना चाहिए। व्यक्ति में निहीत सत्य के अंश के प्रति सम्मान का भाव ही गांधी चिंतन में सामाजिक न्याय की पृष्ठभूमि तैयार करता है। गांधी जी कहते है सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है। (God is Love and Love is God) सत्य के अतिरिक्त संसार से कुछ भी शाश्वत नहीं है। गांधी जी कहते है कि मेरा यह विश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है कि सृष्टि में एकमात्र सत्य की ही सत्ता है इसके सिवाय दूसरा कोई नहीं। सत्य हर संगठन में मनुष्य को मनुष्य से बांधता है बिना सत्य के कोई सामाजिक संगठन नहीं हो सकता। गांधीजी के मानवाधिकारों से ओतप्रोत व्यवहारिक चिंतन में सत्य सामाजिक न्याय के विविध आयामों की सिद्धि का युक्ति स्त्रोत आधार प्रदान करता है।

1.3 अस्तेय – अस्तेय का सामान्य भाषा में अर्थ है चोरी नहीं करना। इसका आशय कोई सामग्री अथवा संपति उसके स्थानी की आज्ञा से प्राप्त न करना। वे इसे चोरी भी मानते है। किसी को उस वस्तु से वंचित करना जो वास्तव में उसकी है। अहिंसक व्यक्ति ऐसी वस्तु को न तो ग्रहण करेगा न ही अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करेगा जो वास्तव में उसकी है ही नहीं। मात्र शरीर से, कर्म से ही ऐसा करना चोरी नहीं है, अपितु मन व विचार मात्र से ऐसी कल्पना करना भी अस्तेय है। किसी अन्य व्यक्ति की वैचारिकी को अपना मालिक साहित्य कहकर प्रस्तुतीकरण करना भी बौद्धिक चोरी है। गांधी जी अस्तेय की गंभीर व्याख्या करते हुए आगे वर्णित करते है कि जिस सामग्री की हमें आवश्यकता नहीं है, फिर भी उसे प्राप्त करना चाहे उसके स्थानी से आज्ञा ले भी ली हो तो भी वह चोरी है। अस्तेयव्रत का पालनकर्ता अपनी आवश्यकताओं को सीमित करता हुआ आर्थिक समानता की ओर समाज को अग्रसर करता रहेगा।

1.4 अपरिग्रह– परिग्रह का आशय संग्रह को बढ़ावा देना सत्यअन्वेषी कभी संग्रह नहीं करता। क्योंकि उसे ईश्वर पर भरोसा है कि वह हमारी जरूरतों का ध्यान रखेगा। केवल वही सामग्री देगा जिसकी हमें जितनी आवश्यकता होगी। व्यक्ति समाज में रहते हुए केवल अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सामग्री का संचय करे तो सामाजिक अन्याय के घटक स्वतः समाप्त होते चले जायेंगे। तत्पश्चात् उपेक्षित, वंचित, पीड़ित एवं कमजोर तबके के लोगों को उनकी आवश्यक जरूरतों की पूर्ति हेतु न्यायसम्मत वितरण की प्रणाली स्वतः सुनिश्चित हो जाएगी। मानव उतना काम करे जितना कि उसमें सामर्थ्य है और उतना ही प्राप्त करें जितनी कि उसे आवश्यकता है। शेष समस्त संसाधन समाज को सुपुर्द कर दे। ऐसा करने से सामाजिक अन्याय स्वतः ही समाप्त हो जायेगा।

1.5 ब्रह्मचर्य– गांधी जी ब्रह्मचर्य को केवल कामेच्छा से संबंधित ही नहीं मानते। उनका मानना है कि मानसिक, शारीरिक एवं वैचारिकी से सभी जगहों पर सभी कालों में अपनी इन्द्रियो पर नियंत्रण स्थापित करना ब्रह्मचर्य है। आगे लिखते हुए है ब्रह्मचर्य का आशय है, ब्रह्म अर्थात सत्य (ईश्वर) के अन्वेषण में चर्चा। वह दैवीय विचारों को अपनाता है। अपना समस्त ध्यान एवं ऊर्जा सामाजिक कल्याण में लगाता है। वह किसी का शोषण न करके सामाजिक सरोकारों से जुड़ा रहता है। वह अपनी इन्द्रियों को भोग विलास से हटाकर समाज के उपेक्षित एवं निर्योग्यताओं से पीड़ित कमजोर वर्ग की सेवा में लगाता है।

गांधीवादी वैचारिकी के सामाजिक न्याय का आधार नैतिक है। उपनिषदों, महात्मा बुद्ध एवं जैन तीर्थकर महावीर के दर्शन से प्रभावित होकर महात्मा गांधी पंचमहाव्रतों के पालन के द्वारा समाज में स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे का भाव विकसित करने की बात करते थे। इन्हीं पांच आधारस्तंभों से सामाजिक अन्याय के कारक स्वतः समाप्त हो जाऐगें। अहिंसा का सिद्धांत मनुष्य के अन्तर्मन में आक्रामक प्रवृतियों को खत्म कर प्राणीमात्र के प्रति प्रेम का अभ्युदय करता है। सत्यमवेषी ईश्वर से साक्षात्कार कर आत्मसात करता हुआ सर्वाधिक कमजोर एवं वंचित वर्ग सम्मानपूर्वक एवं गौरवपूर्ण जीवन व्यतीत करे ऐसी कामना करता है। अस्तेय व्रतधारी अपनी सीमित संसाधनों से जीवनयापन करता हुआ शेष संसाधनों को समाज के कल्याणार्थ प्रस्तुत करता है। यह गांधीजी के न्याय सिद्धांत का आदर्श है मात्र आवश्यक सामग्री का संग्रह कर ईश्वर के प्रति विश्वास व्यक्त करता है। वह हमारी आवश्यकता का सामान रोजाना देता है, वह देगा। वह किसी का धन या अधिकार छीनने में विश्वास नहीं रखता। गांधीय दर्शन की सामाजिक न्याय का स्थापनार्थ पंचमहाव्रत सामजिक आर्थिक एवं राजनीतिक समानता के आदर्श के साथ–साथ स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के व्यवहारिक अनुप्रयोग है।

2. सर्वोदयी समाज एवं सामाजिक न्याय–

सर्वोदयी समाज का आशय ऐसे समाज से है जिसमें उपेक्षित, निर्योग्यताओं से पीड़ित, वंचित एवं कमजोर व्यक्तियों का उदय हो। गांधी जी ने सामाजिक न्याय के आदर्श की प्राप्ति के लिए एक ऐसे सर्वोदयी दर्शन की रूपरेखा प्रस्तुत की जिससे परस्पर संबंधों का आधार सत्य,अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य होगा जहां प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं को पूर्ण विकसित कर सकेगा। जहां स्त्री–पुरूष, ऊंच–नीच के विभेद के

बगैर समान व्यवहार के भागी होगे। जहां शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा होगी। जहां व्यक्ति और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक होगे। दोनों समन्वित रूप से सामाजिक न्याय के आदर्शों पर आधारित राज्य की स्थापना से प्रतिभागी होगे।

व्यक्ति जब स्वयं में नैतिक गुणो को समाविष्ट कर लेता है तो उसमें न कवेल आत्म नियंत्रण एवं आत्म स्वाभिमान का सामर्थ्य आ जाता है, अपितु उसे मानवीय गरिमा एवं प्रतिष्ठा को बनाये रखने का निरन्तर अवसर प्राप्त होता रहता है। यही स्थिति सर्वोदयी समाज को रामराज्य से परवर्तित करती है। पूर्ण स्वराज्य से आशय सबके लिए समाजवादी राज्य से है। जितना किसी राजा के लिए होगा उतना किसानों के लिए, जितना धनवान जमींदार के लिए होगा उतना ही खेती हर मजदूर के लिए, जितना हिन्दुओं के लिए होगा उतना मुसलमानों के लिए होगा जितना जैन यहूदी और सिख लोगों के लिए होगा उतना ईसाई पारसियों के लिए राज्य होगा। उसने जाति पांति, धर्म या दर्जे के भेदभाव के लिए कोई स्थान न होगा।

गांधी जी सर्वोदयी वैचारिकी में स्वराज, समानता, आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता के विविध आयाम सम्मिलित है। सर्वोदयी समाज में समानता का मूल उद्देश्य है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा एवं प्रतिष्ठा को ऊंचा करने एवं मनुष्यता के आधार पर समानता प्रदान करने पर बल दिया है जो धर्म जाति, रंग, लिंग, स्थान आदि से परे मानवाधिकारों को पल्लवित पोषित करती थी। वे आदर्श सामाजिक व्यवस्था से वर्णाश्रम धर्म के समर्थक थे।

सांप्रदायिक सद्भाव के लिए उन्होंने 18 सित. 1924 से 21 दिवस का उपवास रखा। हिन्दू–मुसलमान वैमनस्यता को दूर करने के लिए 1 सित. 1947 और 13 जनवरी 1948 को उपवास रखे। दोनों धर्मों को एक दूसरे धर्म की भावनाओं का सम्मान करना चाहिए।

वे वर्ण व्यवस्था समाप्त नहीं करते थे। उन्हें वे वेदिक अर्थ के प्रस्थापित करना चाहते थे। उनके अनुसार इस व्यवस्था में न तो छुआछूत है और न ही भेदभाव न ही धार्मिक अन्तःविरोध। वे मानव को जन्म से अस्पृश्यता मानने का हिन्दू वैचारिकी को हिन्दू धर्म के लिए कलंक मानते थे। उनका मानना था कि अस्पृश्यता जैसे कलंक को दूर कर मानवीय गरिमा को बनाये रखता। सामाजिक न्याय के उपलब्धि के लिए अपरिहार्य है। आर्थिक असमानता को दूर करना सर्वोदयी समाज का प्रमुख लक्ष्य था उनका मानना था कि,

चरखे का संदेश उसकी परिधि में कहीं यादा व्यापक है। इसका संदेश सादगी, मानव सेवा, अहिंसामय जीवन, गरीब ओर अमीर, पूंजी और श्रम, राज्य और किसान के बीच अविच्छेद संबंध स्थापित करने का संदेश है। उनकी दृष्टि में खादी वृति का आशय जीवन के लिए जरूरी चीजों की उत्पति और उनके बंटवारे का विकेन्द्रीयकरण है। जिससे समाज के सभी वर्ग सर्वहित संभव में संयुक्त होकर अपनी आर्थिक गतिविधियों का संचालन करेगा। किसी भी प्रकार का बाध्यकारी शक्ति के न होने से उपेक्षित एवं वंचित वर्ग को स्वतंत्र आत्म चेतना प्राप्त थी। रामराज्य का एकमात्र लक्ष्य सर्वोदय सुनिश्चित करना है।

3. वर्णाश्रम एवं सामाजिक न्याय–

गांधी के अनुसार वर्ण धर्म ही मनुष्य का कर्म है। मानव मानव समान है फिर भी सामाजिक व्यवस्था के निमित न्यायपूर्ण, शोषण रहित एवं सामाजिक व्यवस्था आवश्यक थी जिसे वर्ण व्यवस्था का स्वरूप प्रदान किया गया। इसके अनुसार गुण एवं कर्म जन्म से ही प्राप्त होते है। वर्णाश्रम धर्म एक प्राकृतिक नियम है। गांधी के शब्दों में ''मानव का लक्ष्य ईश्वरीय साक्षात्कार है उसके लिए वर्णाश्रम धर्म का पालन उपयोगी हो सकता है। क्योंकि वर्णाश्रम धर्म इस पृथ्वी पर मनुष्य जीवन के उद्देश्य की व्याख्या करता है वह रोज–रोज धन बटोरने और आजीविका के भिन्न भिन्न साधन खोजने के लिए पैदा नहीं हुआ है अपितु इसके विपरीत मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि वह अपने प्रभु को जानने के लिए अपनी शक्ति का एक एक अणु काम में ले। इसलिए वर्णाश्रम धर्म उस पर यह पाबंदी लगाता है कि वह जीवित रहने के लिए सिर्फ अपने बाप दादा का पेशा करें। यही वर्णाश्रम धर्म है न कम न ज्यादा।''

(यंग इण्डिया 27 अक्टूबर 1927)

अपने–अपने वर्णाश्रम धर्म के पालन करने से समाज वर्ग संघर्ष से बचकर वर्ग सहयोग की अवधारणा से संचालित होता है। उनका मानना था अलग– अलग वर्णों के व्यवसाय के मध्य निम्नता या श्रेष्ठता जैसी कोई बात नहीं है, उनकी उपयोगिता एवं उपादेयता समाज के लिए समान महत्व की है। उनकी दृष्टि से वर्णों का सृजन, आनुवांशिकी जीविकोपार्जन की सुरक्षा के लिए हुआ था। कालान्तर से वर्ण व्यवस्था पूर्व जन्म आधरित बंद व्यवस्था बन गयी।

4. जातीय व्यवस्था –

गांधीजी जाति प्रथा में निहित बुराइयों के उन्मूलन के पक्षधर थे। वे आडम्बर ढोंग, विषय लंपटता, अस्पृश्यता, असम्मानजनक व्यवहार, अंधविश्वास इत्यादि दोषों का परिमार्जन आवश्यक मानते थे। वे मानवीय हितों के विपरीत स्थापित आचार व्यवहार के नियमों का विरोध करते हुए मानवाधिकारों के संरक्षण पर बल देते थे ताकि किसी भी जाति विशेष का सदस्य होते हुए वह स्वतंत्रता, समता एवं बंधुता का संवहन कर सके। अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे वर्गविहीन एवं जातिविहीन समाज के समर्थक हो गये थे। साथ ही वे हरिजनों एवं स्वर्णों के वैवाहिक संबंधों का समर्थन भी करने लग गये थे।

वर्णाश्रम एवं जातीय व्यवस्था के व्यवहारिक पक्ष में (जो पशुतुल्य व्यवहार पर टिकी शोषण की परिस्थितियों) गांधीजी ने विरोध करना प्रारंभ किया क्योंकि अमानवीय दशाएं वास्तव में व्यक्ति के गुणों को विकसित होने का अवसर नहीं देती। व्यक्ति इन परिस्थितियों के मध्यनजर विभिन्न प्रतिबंधों एवं सीमाओं में जीवनयापन करने को विवश हो जाता है। गांधी जी इन दोषों को दूर करने के लिए जातीय व्यवस्था के प्रति विद्रोही हो गए। उनका कहना था कि जाति प्रथा से अन्याय, असमानता और ऊंच–नीच की भावना व्याप्त होती है। इससे पक्षपात व द्वेष की भावना बढ़ती है। साथ ही साथ इन अवगुणों का परिणाम समग्र समाज को प्रभावित करता है।

जातिप्रथा की इन कुरीतियों का विरोध करते हुए उन्होंने दलितों, अस्पृश्यों, शूद्रों, अतिशूद्रों के मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में अनेक प्रयास किए। जातिप्रथा समाज को विघटन के कगार पर ले जाती है। समाज में व्यक्ति एक दूसरे को ऊंच या नीच स्वीकार करने लग जाते है। ऐसी परिस्थितियों में जाति व्यवस्था को औचित्यपूर्ण स्वीकार नहीं

किया जा सकता है। इसका आशय यह है कि वह अमानवीय असमानता के अधिकार को खंडित करना है। उनके अनुसार ऐसा जल जिससे भूमि में कटाव होने लगे, भूमि का उपजाऊपन नष्ट होने लगे तो जल की उपयोगिता एवं महत्व पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। भारतीय समाज की जातीय व्यवस्था के कारण ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई जो मानव के मानव होने पर ही प्रश्नचिन्ह लगा रही है व समाज विघटन का कारण बन रही है। गांधी जी के शब्दों में, ''जातिप्रथा भारतीय समाज के लिए एक चुनौती है। इसका अन्त अस्पृश्यता उन्मूलन के साथ संभव है, जब तक जाति व्यवस्था बनी रहेगी तब तक छुआछूत भी बनी रहेगी।''

5. अस्पृश्यता निवारण और सामाजिक न्याय

भारतीय समाज की जाति व्यवस्था ने व्यवसाय के आधार पर अलग–2 समूहों में वर्गीकृत कर उनके व्यवसायों को धार्मिक प्रतिबद्धता के अनुसार पवित्र अथवा अपवित्र श्रेणी से आबद्ध कर उनके व्यवसाय विशेष से संबंद्ध होने के नाते उन्हें पूजनीय अथवा अस्पर्शनीय माना जाता था। इसका आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से असमान स्थिति में स्थापित किया गया था। अपवित्र समझे जाने वाले व्यवसायों में कार्यरत लोगों को पशुओं से भी बद्तर जीवन जीने को मजबूर होना पड़ता था अर्थात् वे मानव होने के अधिकार से भी वंचित थे। छोटी आयु में गांधी जी अपनी मां के आदेशों के अनुसार घर में सफाई करने वाले मेहतर, स्कूल में अस्पृश्य जाति के सहपाठियों से छुआछूत करते थे किन्तु बाद में उन्होंने सामाजिक अन्याय की दशाओं को देखकर अस्पृश्यता की खिलाफत की। उन्होंने छुआछूत को हिन्दू समाज के लिए कलंक बताया और छुआछूत को हिन्दू समाज का फोड़ा कहकर इसकी आलोचना की। उन्होंने स्पष्टतः स्वीकार किया कि यदि कोई यह प्रमाणित कर दे कि छुआछूत हिन्दू धर्म का अंग है तो वे हिन्दू धर्म के विरूद्ध विद्रोह करने में हिचकिचाहट नहीं करेगें। कोई भी व्यक्ति जन्म से अपवित्र नहीं हो सकता। अपवित्रता लोगों की आंतरिक मनोस्थिति में निहीत होती है। बुरी मानसिकता ही अपवित्र और अस्पृश्य है। पवित्र तो केवल वही व्यक्ति है जो ईश्वरीय भय को मानता है और उसकी सृष्टि की सेवा करता है। उन्होंने आध्यात्मिक आधार पर भी यह स्पष्ट किया कि प्रत्येक व्यक्ति में सत्य का अंश है, इसलिए उससे छुआछूत करना ईश्वरीय अंश से छुआछूत करना है।ऐसी स्थिति में किसी को जन्म से ही अछूत मान लेना न केवल मानवता के प्रति अपराध है, वरन् यह सत्य की भी अवहेलना करना है, जो कि शाश्वत है। गांधी जी ने हरिजन नाम देकर अछूतों को धार्मिक अधिकार दिलवाये जिनके अभाव में वे अछूत माने जाते थे। उनके द्वारा मानवाधिकार के मूल उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अस्पृश्यता निवारण के प्रयास कर स्वतंत्रता एवं समानता का वातावरण सृजित करने का सार्थक एवं उपलब्धि मूलक प्रयास किया गया।

6. न्यायसिता सिद्धांत एवं सामाजिक न्यायः

गांधीजी द्वारा उतरदायित्व विहीन स्वतंत्रता की पोषक बाजारवादी मानसिकता की कड़ी आलोचना करते हुए विकल्प के रूप में धरोहरवादी (न्यायसिता) सिद्धांत प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि भारत, इंगलैण्ड और इटली जैसे देशों के तरह शहरी सभ्यता वाला राष्ट्र नहीं है। भारत एक ग्राम प्रधान अर्थव्यवस्था है।जो अपनी–अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में आत्मनिर्भर रही है। हमें पश्चिमी नमूने की नकल करने की आवश्यकता ही कहां है। बाजारवाद की व्यवस्था के चलते प्रतिस्पर्धा एवं बाजार की समस्याएं खड़ी हो जाएगी और हम सामाजिक न्याय के उद्देश्यों से दूर

होते चले जायेंगे। उपेक्षित समूहों का शैक्षिक उत्थान होने से वे अहिंसक असहयोग के अस्त्र से सामाजिक न्याय को प्राप्त कर सकेंगे।

7. महिला एवं सामाजिक न्यायः

सामाजिक प्रगति में महिला एवं पुरूष एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक है। दोनों में एक ही आत्मा निवास करती है। मूलतत्व एक ही है। एक की सहायता के अभाव में दूसरा सुगम्य जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। गांधी जी कहते है स्त्री–पुरूष की गुलाम नहीं है। वह अर्द्धांगिनी है, सहधर्मिणी है।उसको मित्र समझना चाहिए।

गांधी जी महिलाओं से संबंधित कुप्रथाओं और उनके माध्यम से महिलाओं के शोषण की विभिन्न प्रविधियों को सामाजिक न्याय के मार्ग में सबसे विकट बाधाएं मानते थे जैसे बाल विवाह, अशिक्षा, विधवाप्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, महिलाओं के प्रति अन्य सामाजिक एवं आर्थिक प्रतिबंध, देवदासी प्रथा, दास रूप में स्त्री, वैश्यावृति इत्यादि। स्त्रियों में संबंधित उक्त कुरीतियों को दूर किए बिना समााजिक न्याय के उद्देश्य की प्रतिपूर्ति संभव नहीं है। गांधी जी ने स्त्री शोषण के सभी बाधाओं को समाप्त करने हेतु जीवनपर्यन्त संघर्ष किया।

महिलाओं को समाज में उचित जगह दिये जाने के लिए उन्हें भी पुरूष के समान स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के अधिकारों की आवश्यकता को प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा कि ''मैं स्त्रियों के अधिकारों के मामलें से कोई समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय मे कानून की तरफ से स्त्री के लिए कोई भी ऐसी रूकावट नहीं होनी चाहिए जो पुरूष के लिए नहीं है। मैं लड़कों और लड़कियों के साथ बिल्कुल बराबरी का दर्जा चाहूंगा।''

(हिन्दी नवजीवन 17.10.1929)

निष्कर्ष : गांधीय चिंतन राजनीतिक दर्शन का एक अद्भुत प्रयोग है। गांधी चिंतन का सामजिक न्याय का आयाम केवल राजनीतिक और सामाजिक क्रांति नहीं बल्कि आध्यात्मिक क्रांति भी है। उन्होंने सभी धर्मों को समान महत्व देते हुए सामाजिक समरसता की वकालत की। उन्होंने अस्पृश्यता को 'राष्ट्रीय पाप' की संज्ञा दी। उन्होंने हरिजन नाम देकर उन्हें सामाजिक मुख्यधारा में सम्मिलित करने का अनथक प्रयास किया। न्यायमिता सिद्धांत के सामाजिक और आर्थिक आयाम संपोषी समाज का सृजन करते हैं। गांधीय दर्शन आध्यात्मिक एवं संसारिकता के विलक्षण समन्वय का एक नवीन आयाम प्रस्तुत करता है। उनके चिंतन को परंपरागत वर्गीकरणों के व्यक्तिवाद या समष्टिवाद, उदारवाद या समाजवाद, पूंजीवाद या साम्यवाद की परिधि में बांधना उपयुक्त नहीं है। उनका दर्शन मूलतः आध्यात्मिकता, अहिंसा, समानता और आत्मनिर्भरता पर आधारित है। उनका मानना है कि समाज तब तक सशक्त नहीं हो सकता जब तक कि उसमें हर व्यक्ति को समान अधिकार, सम्मान और आत्मोन्नति के अवसर न मिले। उन्होंने सामाजिक अन्याय के विरूद्ध विशेषकर अस्पृश्यता, जातिवाद, महिला भेदभाव, के विरूद्ध जीवनपर्यन्त संघर्ष किया। नारी सशक्तीकरण, धार्मिक सहिष्णुता और शैक्षिक उत्थान के द्वारा ही सामाजिक न्याय की स्थापना की पैरवी की। गांधीय दर्शन एक न्यायपूर्ण, अहिंसक, आत्मनिर्भर एवं संपोषी समाज का प्रेरणास्त्रोत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. महात्मा गांधी (1927–1929) 'आत्मकथा' (सत्य के साथ मेरे प्रयोग) , नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद

2. महात्मा गांधी (11 फरवरी 1933) 'हरिजन' (साप्ताहिकी), नवजीवन ट्रस्ट , अहमदाबाद

3. महात्मा गांधी (1919) 'नवजीवन' , नवजीवन ट्रस्ट , अहमदाबाद

4. महात्मा गांधी (1919–1932) 'यंग इंडिया', नवजीवन ट्रस्ट , अहमदाबाद

5. महात्मा गांधी (1945), Constructive Programme : Its Meaning and Place, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद

6. डॉ. रामजी सिंह (2005), गांधी और सामाजिक न्याय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

7. प्रो. राजेन्द्र प्रसाद (2010), गांधी विचार और समकालीन भारत, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

8. डॉ. प्रभाकर माधवे (1998), गांधी और सामाजिक परिवर्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

9. डॉ. सुरेश शर्मा (2003), महात्मा गांधीः चिंतन और समाज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

10. डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी (2006) , प्रमुख राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर

11. डॉ. नरेन्द्र देव (2004), गांधी के सामाजिक विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

12. डॉ धर्मपाल, गांधी एक विचारधारा, सिद्धार्थ पब्लिकेशन, भोपाल

13. प्रो. के.एल. कमल (1999), महात्मा गांधी और भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

14. संपूर्ण गांधी वांग्मय (1958–1994), सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली